Indian Streams Research Journal
Vol.2,Issue.I/Feb; 12pp.1-4
CHARANJIT KAUR
ISSN:-2230-7850

Research Papers

जाति उन्मूलन – लोहिया का वैचारिक एवं क्रियात्मक पक्ष

अशोक अहिरवार

एसोसिऐट प्रोफेसर इतिहास विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

Abstract

रामनोहर लोहिया चाहते थे कि जाति उन्मूलन के लिए जबरदस्त काम किया जाये, क्रांति स्तर पर जिसके लिए उन्होंने विषेष अवसर का सिद्धांत प्रतिपादित किया। लोहिया के इस विषेष अवसर के सिद्धांत ने भारतीय राजनीति में काफी गर्मी पैदा की है। आज भी यह बहस और संघर्ष का मुद्दा बना हुआ है। इस सिद्धांत के पीछे लोहिया का सीधा सा तर्क था कि जिस तरह 'किसी पिछड़े हुये इलाके को विकसित करने के लिए हम उसे विषेष सुविधा प्रदान करते हैं उसी तरह हमें सामाजिक और राजनैतिक जीवन में भी करना होगा। जो तबका हजारों साल से इस तरह से कुचलकर रखा गया है कि वह सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी पिछड़ गया है तब हमें यह मानने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए कि 'समान अवसर' देकर उसे हम कभी भी उच्च–वर्णों के बराबर नहीं ला सकते।' 'विषेष अवसर' के कई मानी हो सकते हैं लोहिया ने इसे ही ठोस रूप प्रदान करते हुए कहा कि इन तबकों को जो हमारी आबादी के 90: हैं, सरकारी काम–काज में 60: स्थान मिलने चाहिए।

KEYWORDS:

सर्वहारा वर्ग, भाषा और सम्पत्ति, जाति उन्मूलन, विषेष अवसर का सिद्धांत, पद दलित समूह, अस्पृष्यता, पाप मूलक अवधारणा।

प्रस्तावना :-

हमारे देश के प्राचीन कर्णधारों ने किसी भी मकसद को लेकर जातिप्रथा का निर्माण किया हो चाहे वह श्रम–विभाजन या बौद्धिक विकास, वह उस मायने में कि जब ब्राह्मण लोग अध्ययन–अध्यापन में जुटे हों तो अन्य कार्यों के करने के लिए कोई वर्ग नौकर के रूप में जरूर होना चाहिए। परन्तु कालांतर में इसके जो घिनौने परिणाम निकले उसने हमारे देश की अधिकांश आबादी को दुःखी और शोषित किया। यह परिणाम था अस्पृश्यता जिसका अर्थ छुआछूत है। डा. भीमराव अम्बेडकर ने इसे भोगा था उन्होंने लिखा है कि 'जब मैं अपने घर के पीछे एक तालाब में पानी पीने लगा तो मुझे कुछ लोगों ने पीटा और कहा कि तुम अछूत हो और तुम इस तालाब का पानी पीने योग्य नहीं हो, परन्तु थोड़ी देर बाद उसी तालाब में एक जानवर को पानी पीता देखकर मैं अचम्भित रह गया। क्या था यह जो एक जानवर से आदमी को कम महत्व देता था?[1] यह था हमारे देश का कोढ़ जो जाति–प्रथा की प्रतिक्रिया में तैयार हुआ था और आज तक विद्यमान है, लेकिन रूपों की भिन्नता में, अस्पृष्यता।

'कुण्ठा तथा वर्जनाजन्य जाति प्रथा ने समाज में ऐसे कोढ़ को जन्म दिया कि व्यक्ति, व्यक्ति के स्पर्श को पापमूलक अवधारणा से संबद्ध कर चलने लगा। छुआछूत

Indian Streams Research Journal
Vol.2,Issue.I/*Feb;* 2012

की बीमारी ने समाज की रही–सही गतिशीलता को चेतना शून्य कर दिया। मनुष्य, मनुष्य के प्रति दृष्टिकोण की अभिशाप मूलक चेतना की निष्क्रियता ने लोहिया को पैनी भाषा में बोलने व आंदोलन चलाने के लिए मजबूर कर दिया था।[2]

डा. लोहिया का कहना है कि भारतीय समाज में वर्ण–व्यवस्था का ढांचा अन्य देशों से काफी भिन्न है। धर्म, दर्शन, पुराण और मिथक के द्वारा उसे इतना पुष्ठ किया गया है कि वह एक हद तक अभेद्य बना गया है। हजारों वर्षों के संस्कार ने उसे इतना पुख्ता कर डाला है कि जो इसे सिद्धांततः गलत मानते हैं वे भी इस व्यवहार में तोड़ नहीं पाते। 'इस दौर के बाकी सभी लोगों ने इसे गलत बताया था। वे सब आचारण में जाति छोड़ने को तैयार नहीं थे जिनमें प्रगतिशील लोगों के अगुवा पंडित जवाहरलाल नेहरू भी शामिल थे लेकिन जाति को एक सामाजिक सच्चाई मानकर उसे तोड़ने की लड़ाई उन्हें जातिवाद लगती थी।[3] लोहिया आगे कहते थे कि इसके समाधान के लिए जातिवाद की चारों तरफ फैली जड़ों को ठीक–ठाक समझकर उन पर प्रहार नहीं किया जाता तो इसे किसी प्रकार भी तोड़ा नहीं जा सकता। वे मानते थे कि गौतमबुद्ध से लेकर गांधी, अम्बेडकर तक इस पर हमले होते रहे हैं, पर मर्ज है कि बढ़ता ही जा रहा है।[4] लोहिया का कहना है कि 'जब तक इस पर चौतरफा हमला नहीं होगा, तब तक इसे खत्म नहीं किया जा सकता। अर्थात् समाज के पिछड़े हुये लोगों को न केवल धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर बराबरी का दर्जा मिले, राजकीय स्तर भी उन्हें आगे बढ़ाया जाये। क्योंकि आर्थिक और सामाजिक समता समाजवाद के प्रधान लक्ष्य है। आर्थिक गैर बराबरी और जाति–पांति जुड़वां राक्षस है और अगर एक से लड़ना है तो दूसरे से भी लड़ना जरूरी है।[5]

उन्होंने इस मानसिक घटिया पन को उजागर करते हुए तथा इसके पोषक व्यक्तियों पर प्रहार करते हुए कहा कि 'बनारस में हिन्दुस्तान के राष्ट्रपति ने खुले आम दो सौ ब्राह्मणों के पैर धोये। जन्म के आधार पर किसी ब्राह्मण के चरण स्पर्श का तात्पर्य होता है जातिप्रथा, गरीबी और दुःखदर्द को बनाये रखने की प्रत्याभूति। 'क्योंकि जिसके हाथ सार्वजनिक रूप से ब्राह्मणों के पैर धो सकते हैं उसके पैर शूद्र और हरिजन को ठोकर भी तो मार सकते हैं।[6] उन्होंने कहा इस प्रकार के कृत्यों से समाज में निराश का माहौल बनता है। उन्होंने दलित वर्ग को भारतीय सर्वहारा वर्ग का नाम लिया। इसमें संदेह नहीं कि शोषण के औजारों में सबसे व्यापक औजार सम्पत्ति का है पर भारतीय समाज का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करते हुए लोहिया ने कहा कि माया यहां मात्र एक औजार नहीं है, तीन औजार हैं– सम्पत्ति जाति और भाषा और यह स्थिति आज से नहीं हजारों वर्षों से है हिन्दुस्तान में जिसके पास सम्पत्ति है उनमें अधिकांश के पास जाति की दौलत भी रहती है और अक्सर ही वे इन दोनों के बल पर भाषा की सम्पत्ति भी हासिल कर लेते हैं। लोहिया के विचारानुसार – अंग्रेजी ज्ञान से वंचित गरीब ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिया सभी समाज के दबे और कुचले हुये लोग हैं। इन्हें निम्न वर्ग के लोगों के साथ मिलकर मौजूदा व्यवस्था के खिलाफ संगठित मोर्चा बनाना चाहिए, यह मोर्चा ही वर्ग और वर्ण की विषमता पर आधारित समाज के ढ़ाचे को तोड़ सकेगा। लोहिया ने कहा 'आज बड़ी गड़बड़ी यह है कि कुर्ता–पाजामा वाला छोटे जात ब्राह्मण, ठाकुर कंठलगांठ और चूड़ीदार पाजामा की ओर निहारता है। मैं इन गरीब ब्राह्मणों, ठाकुरों से कहूंगा कि दिल्ली लखनऊ, पटना के सामन्तों की ओर मुंह फेर लो और देश के करोड़ों तेली, तमेली, हरिजन, पासी, कुर्मी, अहीर की ओर दूसरी तरफ मोमिन, जुलाहा, अन्सारी आदि – जिस दिन देश के गरीब ब्राह्मण, ठाकुर, सैयद का एका हिन्दुस्तान के करोड़ों कुर्मी, कोयरी, अहीर, जुलाहा, पासी, भंगी, नाई आदि के साथ हो जायेगा, उस दिन इस एका से एक ऐसी बारूद बनेगी कि जिससे दिल्ली, पटना और लखनऊ की गंदगियां और कूड़ा जलकर राख हो जायेगा और नया हिन्दुस्तान बनना शुरू होगा। लोहिया का कथन कुछ ऐसा लगता है कि वे जातीय संघर्ष चाहते थे। परन्तु ऐसा नहीं है उनकी जाति नीति का लक्ष्य है जाति व्यवस्था का विनाश।

डा. लोहिया ने जाति–प्रथा जैसी विभाजक शक्ति को समाप्त कर समानता पैदा करने के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से भी प्रहार किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जाति–प्रथा के कारण प्रायः छोटी जातियां सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत की जाती है। जिससे दासता उत्पन्न होती है, और दासता से विभिन्न प्रकार का शोषण उत्पन्न होता है। डा. लोहिया की दृष्टि में पिछड़ी हुई जातियों को आर्थिक दृष्टि से सबल करने और उनमें आत्मसम्मान जागृत करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय किये जा सकते हैं – जैसे साढ़े छः एकड़ वाली बात या खेतिहर मजदूर की मजदूरी बढ़ाने वाली बात या ऊंची से ऊंची आमदनी या नीची से नीची आमदनी के बीच में एक मर्यादा बांधने वाली बात।' डा. लोहिया के इस उपाय के पीछे यही तर्क है कि सामान्यतयः छोटी जाति के ही व्यक्ति खेतिहर मजदूर हैं, वहीं भूमिहीन हैं और उन्हीं को आय–मर्यादा की सीमा से कुछ आर्थिक दृष्टि से उन्नत किया जा सकता है। उन्होंने लिखा है कि मेहतरों की तनख्वाह सारे हिन्दुस्तान में बढ़ जाये तो, एक आर्थिक सुधार होगा, इसके साथ जातिप्रथा पर एक बहुत बड़ा प्रहार ही होगा।[8]

राममनोहर लोहिया का जातिप्रथा का तीसरा प्रहार सामाजिक दृष्टिकोण पर आधारित है। उन्होंने कहा 'जाति प्रथा ने जिस आत्मीयता तथा सौहाद्र को खो दिया है। उसे मानव समाज में पुनः प्रतिष्ठित किया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने दो सुझाव दिये हैं – (1) सहभोज तथा (2) अंर्तजातीय विवाह'। [9]सहभोज के संबंध में उनका विचार था कि विभिन्न छोटी–बड़ी जातियों के हजारों व्यक्ति सहभोज में सम्मिलित होकर जातिनाश हेतु जनमत

को प्रभावशाली ढंग से प्रभावित कर सकते हैं, और उन्होंने ऐसा किया भी।[10] अंर्तजातीय विवाह के संबंध में उनका मत था कि 'अगर जाति–पांति की दीवारें न हों तो न जाने कितने द्विज लड़कों को ध्यान धोबिनों और भंगियों की ओर खींचे जो उनके व देश के लिए कल्याणकारी हो। उसी तरह न जाने कितने शूद्रों और अछूतों का मन मसोस कर रह जाता होगा कि ब्राह्मणियों तथा बनियाइनों की दुनिया देख नहीं पाते। अब जरूरी होगा कि शूद्र, द्विज और हरिजन 'समान प्रसव जाति' के सूत्र को न केवल अच्छी तरह समझे बल्कि स्थायी मानसिक दशा के रूप में अपनायें, क्या – ब्राह्मण भंगिन से बच्चे पैदा नहीं कर सकता?और क्या भंगी ब्राह्मण से नहीं?इस संबंध में यह भी याद रखना होगा कि सामान्य तौर से कुर्मी तथा तेली द्विजों के साथ संबंध जोड़ने और बराबरी हासिल करने का इच्छुक होता है, लेकिन हरिजनों के साथ नहीं। इस तरह की मनोवृत्ति सहज न होकर जटिल और विषमय है अब तो सहज वृत्ति से ही काम चलेगा कि जो एक दूसरे से बच्चे पैदा कर सकें वे एक जाति के हैं।[11] लोहिया अन्तर्जातीय विवाह को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि 'मैं एक बात साफ कर दूं कि मुझे सेठ मिसरानी और सेठानी महाराज संबंध को कोई तिरस्कार नहीं। मैं केवल उनका विस्तार चाहता हूँ। ब्राह्मणी–भंगी, सेठानी–चमार, अहीरिन–पासी, कहारिन–ब्राह्मण, धोबिन–सेठ, जैसे संबंध बहुतायत में हों। मैं जानता हूँ इस सपने को साकार होने में बहुत देर है। परन्तु इस सपने को साकार करने से ही हिन्दुस्तान बलवान हो सकता है।[12] डा. लोहिया अपने इन विचारों को प्रतिफलित करने के लिए सरकार पर दबाव डालते हुए कहते थे कि 'जिस दिन प्रशासन और फौज में भर्ती के लिए और बातों के साथ–साथ शूद्र और द्विज के बीच विवाह को योग्यता और सहभोज के लिए इन्कार करने पर अयोग्यता मानी जायेगी। उस दिन जाति पर सही मानो में हमला शुरू होगा। वह दिन अभी आना है।[13]

डा. लोहिया का अगले चरण का जाति पर आक्रमण राजनैतिक रूप से होता है। उनका कहना था कि जाति प्रथा के कारण जनता के अधिकांश भाग का राजकीय कार्य में सक्रिय हिस्सा नहीं हो पाता। अपवादों को छोड़कर निम्न जातियों में से नेतृत्व का सृजन नहीं हो पाता है। अपनी दबी हुई स्थिति के कारण वे अपने मताधिकार का प्रयोग तक नहीं कर पाते। उनका न तो सही ढंग से प्रतिनिधित्व हो पाता है और न ही उन्हें किसी प्रकार का राजनैतिक ज्ञान ही। इन समस्त कारणों से उनकी क्षमतायें विकसित नहीं हो पाती। जिस कारण वे राजनैतिक कार्यों के प्रति उदासीन हो जाते हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्र जनता के अधिकांश भाग के सहयोग से वंचित रह जाता है। डा. लोहिया ने उनमें राजनैतिक चेतना भरने और राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए प्रत्यक्ष चुनाव, व्यस्क मताधिकार और विशेष अवसर के सिद्धांत की आवश्यकता पर बल दिया। व्ययस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के संबंध में उनका मत है कि 'जैसे–जैसे व्ययस्क–मताधिकार चलता रहेगा, चुनाव चलते रहेंगे, वैसे–वैसे जाति का ढीलापन बढ़ता जायेगा।[14] उनका मानना था कि फ्रांस व रूस की राज्यक्रांतियों के लिए समान अवसर का सिद्धांत उपयुक्त है। परन्तु जातिप्रथा से व्यथित भारत के लिये यह सिद्धांत अपूर्ण है। वे चाहते थे कि जाति उन्मूलन के लिए जबरदस्त काम किया जाये, क्रांति स्तर पर जिसके लिए उन्होंने विशेष अवसर का सिद्धांत प्रतिपादित किया। लोहिया के इस विशेष अवसर के सिद्धांत ने भारतीय राजनीति में काफी गर्मी पैदा की है। आज भी यह बहस और संघर्ष का मुद्दा बना हुआ है। इस सिद्धांत के पीछे लोहिया का सीधा सा तर्क था कि जिस तरह 'किसी पिछड़े हुये इलाके को विकसित करने के लिए हम उसे विशेष सुविधा प्रदान करते हैं उसी तरह हमें सामाजिक और राजनैतिक जीवन में भी करना होगा। जो तबका हजारों साल से इस तरह से कुचलकर रखा गया है कि वह सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भी पिछड़ गया है तब हमें यह मानने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए कि 'समान अवसर' देकर उसे हम कभी भी उच्च–वर्णों के बराबर नहीं ला सकते।' 'विशेष अवसर' के कई मानी हो सकते हैं लोहिया ने इसे ही ठोस रूप प्रदान करते हुए कहा कि इन तबकों को जो हमारी आबादी के 90ः हैं, सरकारी काम–काज में 60ः स्थान मिलने चाहिए। यही नहीं उन्होंने अपनी पार्टी की समितियों के गठन के लिए तथा विधानसभा और संसद के उम्मीदवारों के चयन के बारे में भी यही नियम बनाय कि 60ः स्थान इस तबके को मिलें। लोहिया का मानना था कि समाज के बहुसंख्यक दबे–कुचले लोग, जो खुली प्रतियोगिता में सफल नहीं हो पायेगें, उन्हें सहारा देकर हम आगे ले जायें, इससे न केवल वर्णों की जकड़ ढीली होगी भारतीय समाज की हजारों वर्षों की जड़ता भी टूटेगी। [15]डा. लोहिया का मानना था कि वर्तमान व्यवस्था में तो विशेष अवसर का सिद्धांत ही क्रांतिकारी हो सकता है। वे योग्यता–अयोग्यता पर विचार किये बिना पिछड़ी जातियों को शासन के उच्च पदों पर, राजनीति में नेतृत्व के पर्दो पर, सेना के पर्दो पर तथा व्यापारिक पदों पर आसीन करना चाहते थे।[16]उनके विशेष अवसर के सिद्धांत का दर्शन और मानना यह है कि 'जाति अवसर को अवरूद्ध करती है और अवरूद्ध अवसर योग्यता को अवरूद्ध करता है। अवरूद्ध योग्यता पुनः अवसर को अवरूद्ध करती है। फलतः पिछड़ी जाति कभी उठ नहीं पाती।[17]

इसके बाद भी लोहिया भारतीय जनमानस को बड़ा दिल बनाने के लिए संदेश देते थे कि 'जब तक हमें शूद्रों, हरिजनों और औरतों की सोई हुई आत्मा का जगना देखकर उसी तरह खुशी नहीं होगी जिस तरह किसान को बीज का अंकुर फूटते हुए देखकर होती है और उसी तरह जतन और मेहनत से उसे फलने–फूलने और बढ़ाने की कोशिश नहीं होगी जब तक हिन्दुस्तान में किसी तरह की

नई जान नहीं लायी जा सकेगी।[18] डा. लोहिया पिछड़ी जातियों को न केवल नेतृत्व के पदों पर आसीन करना चाहते थे बल्कि उनकी आत्मा को जागृत करना, उन्हें सुसंस्कृत बनाना तथा उनमें अधिकार भावना भरना चाहते थे। उनकी यह अभिलाषा थी कि द्विज तथा शूद्र अपने दोषों से मुक्त हों। वे पद–दलितों में अधिकार के प्रति चेतना इसलिए लाना चाहते थे कि उनके मतानुसार कर्त्तव्य की भावना कभी आ नहीं सकती, जब तक अधिकार की भावना नहीं आयेगी। उन्होंने यह विश्वासपूर्वक कहा कि 'अगर महात्मा गांधी को आत्म–सम्मान नहीं रहा होता और एक बहुत ऊंचे पैमाने का आत्म–सम्मान, तो दक्षिण अफ्रीका में वे कभी भी हिन्दुस्तानियों के अधिकार और कर्त्तव्य की लड़ाई नहीं लड़ सकते थे। जो आदमी जानता है कि कहां मेरी इज्जत खत्म हो रही है, वही आदमी अपना काम और कर्त्तव्य पूरा कर सकता है।[19] वे चाहते थे कि पद–दलित समूह गांधी का रूप धारण कर ले, और तभी यह समूह जो अभी तक मुर्दा है, प्राणवान बनेगा। उनका कहना था कि जाति के विद्रोह में हिन्दुस्तान की मुक्ति है।[20]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1शंकरानंद शास्त्री, युग पुरूष डा. भीमराव अम्बेडकर, जीवन संघर्ष एवं राष्ट्र सेवायें, नई दिल्ली, पृ. 28.
2राजेन्द्र मोहन भटनागर, समग्र लोहिया, किताबघर, नई दिल्ली, 1982, पृ. 157.
3साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 14 अक्टूबर 1990, पृ. 12
4प्रभात खबर पत्रिका, लखनऊ, 25 मार्च 1990, पृ. 3.
5राममनोहर लोहिया, जाति प्रथा, समता प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पूर्वी लोहानीपुर, पटना, 1981, पृ. 18.
6गिरिराज किशोर, डॉ आनन्द कुमार, लोहिया के सौ वर्ष – तब और अब – सर्व सेवा संघ – प्रकाशन वाराणसी, 2001
6राममनोहर लोहिया, जातिप्रथा, समता प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पूर्वी लोहानीपुर, पटना, 1981, पृ. 28.
7ओमप्रकाश हेमकार, डा. राममनोहर लोहिया, जीवन और दर्शन, चेतना साहित्य प्रकाशन, फैजाबाद, 1968, पृ. 181.
8राजेन्द्र मोहन भटनागर, समग्र लोहिया, किताब घर नई दिल्ली, 1982, पृ. 157.
9साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 14 अक्टूबर 1990, पृ. 12.
10राममनोहर लोहिया, देश–विदेश नीति, कुछ पहलू, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970, पृ. 91.
11राममनोहर लोहिया, जातिप्रथा, समता प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पूर्वी लोहानीपुर, पटना, 1964, पृ. 68, सन् 1964.
12राममनोहर लोहिया, जातिप्रथा, समता प्रकाषन प्राइवेट लिमिटेड, पूर्वी लोहानीपुर, पटना, 1964, पृ. 68, सन् 1964.
13ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1977, पृ. 127.
14राममनोहर लोहिया, निराषा के कर्त्तव्य, नवहिन्द प्रकाषन, हैदराबाद, 1967, पृ. 29.
15प्रभात खबर पत्रिका, लखनऊ, 25 मार्च, 1990, पृ. 3.
16राममनोहर लोहिया द्वारा दिया गया भाषण–17 जुलाई, 1959, हैदराबाद.
17राममनोहर लोहया, गांधी, मार्क्स एण्ड सोषलिज्म, नवहिन्द प्रकाषन, हैदराबाद, 1963, पृ. 33.
18मुख्तार अनीष एवं विजयकांत दीक्षित द्वारा सम्पादित स्मारिका, लोहिया एक बहुआयामी व्यक्तित्व, पार्क रोड, लखनऊ, 1984, पृ. 63.
19राममनोहर लोहिया के 17 जुलाई 1959 को हैदराबाद के भाषण से.
20ओंकार शरद, लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाषन, इलाहाबाद, 1977, पृ. 102